स्वामी शरणानन्द : एक विहंगावलोकन

ब्रह्मलीन स्वामी शरणानन्द जी महाराज एक महान् क्रान्तदर्शी, तत्त्ववेत्ता, भगवद्भक्त एवं मानवता के संरक्षक सन्त थे। उनका प्रादुर्भाव उत्तर भारतवर्ष में 20 वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ। उनके जीवन के उन्मेष के सम्बन्ध में समय-समय पर प्रसंगवश उन्हीं के श्री मुख से जो कुछ सुना गया, उससे हम लोगों ने जाना कि बचपन में ही लगभग 10 वर्ष की अवस्था में उनकी आँखें चली गयीं। उनके अन्धेपन के दुःख से सारा परिवार अथाह दुःख में डूब गया, परन्तु उस दुःख के प्रभाव से इनमें एक प्रश्न पैदा हो गया—'क्या ऐसा भी कोई सुख होता है, जिसमें दुःख शामिल न हो?' उत्तर मिला कि ऐसा सुख साधु-सन्त को होता है, जिसमें दुःख सम्मिलित नहीं रहता। इस उत्तर से उन्हें जीवन की राह मिल गई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं साधु हो जाऊँगा। इनके मन में यह चिन्तन चलने लगा कि साधु कैसे बनूँ! सत्गुरु रूप सन्त मिले। बातचीत हुई। सन्त ने परामर्श दिया कि ईश्वर के शरणागत हो जाओ। इनके बाल्यकाल के कोमल हृदय पर सन्त की वाणी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। ईश्वर की शरणागति स्वीकार करते ही इनके मन में ईश्वर से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हो गई। उस उत्कण्ठा ने शरीर और संसार के सब बन्धनों को ढीला कर दिया। 19 वर्ष की उम्र में इन्होंने विधिवत् संन्यास ले लिया। इनका नवीन नामकरण हुआ 'स्वामी शरणानन्द।' उसी समय से सब सामान और साथियों का सहारा छोड़ कर ये संन्यास धर्म के कठोर व्रतों का दृढ़ता से पालन करते हुए भगवान के सहारे रहने लगे।

श्री महाराज जी की बाल्यकालीन घटनाओं से स्पष्ट विदित होता है कि भगवान के शरणागत होने का भाव इनमें इतना सजीव था कि—सर्व समर्थ प्रभु सदैव अपने साथ हैं—इस सत्य के अभिव्यक्त होने में देर नहीं

लगी। एक बार मथुरा से आगरा जाते समय ये अकेले ही पैदल यमुना के किनारे-किनारे जा रहे थे। एक स्थान पर ढाह गिरी। ये पानी में जा पड़े। नदी चढ़ी हुई थी। हाथ की लाठी छूट गई। तैरना कुछ आता था, पर बिना देखे पता नहीं चला कि किधर की ओर तैरें। शरण्य की याद आई और उनके भरोसे इन्होंने जल में डूबते हुए शरीर को ढीला छोड़ दिया। तत्काल ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी ने इनको जल में से निकाल कर खुश्की पर डाल दिया। उठने के लिए जब इन्होंने धरती पर हाथ टेका तो एक नयी लाठी हाथ में आ गई। प्रभु की शरणागत-वत्सलता को पाकर इनका हृदय भर आया। उनकी महिमा से अभिभूत, उनके प्यार में मस्त होकर ये उठे और चल दिए।

इनके जीवन की ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनसे ईश्वर के प्रति अविचल आस्था एवं अनन्य शरणागति का परिचय मिलता है। जब कभी ये वृन्दावन में होते तो प्रति-दिन श्री बाँके बिहारी जी के दर्शन करने जाते थे। एक दिन एक मित्र ने पूछ लिया, कि "महाराज जी! आपको दिखाई तो देता नहीं है—दर्शन कर नहीं सकते, फिर आप मन्दिर में क्यों जाते हैं?" श्री महाराज जी ने उत्तर दिया—"भले आदमी! सोचो तो सही—मेरी आँखें नहीं हैं, तो क्या ठाकुर जी की आँखें नहीं हैं? मैं नहीं देख सकता, परन्तु वे तो देखते हैं। मुझे देख कर उन्हें प्रसन्नता होती है, इसलिए मैं मन्दिर में जाता हूँ।" कितना सजीव ईश्वर-विश्वास है।

श्री स्वामी जी महाराज एक बार ट्रेन में बैठे थे। ईसाई मत के एक पादरी साहब भी वहाँ आकर बैठ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने श्री महाराज जी से पूछा कि आप मसीहा को जानते हैं? इन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया, "जी हाँ, जानता हूँ।" पादरी साहब ने फिर प्रश्न किया कि "मसीहा के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?" इस प्रश्न को सुन कर बड़ी प्रसन्नता

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

एवं कॉनफिडैंन्स के साथ श्री महाराज जी ने कहा—"भाई, मसीहा खुदा के पुत्र हैं, मैं खुदा का दोस्त हूँ, मसीहा मेरा सगा भतीजा है। मैं उसको अच्छी तरह से जानता हूँ। मसीहा मुझे बहुत प्यारा लगता है।" एक गेरुए वस्त्रधारी हिन्दू संन्यासी मसीहा को अपना सगा सम्बन्धी मानता है और आत्मीयता के नाते प्यार करता है—ऐसे सम्बन्ध की कल्पना भी पादरी साहब नहीं कर सकते होंगे। वे श्री महाराज जी का उत्तर सुन कर स्तम्भित रह गए। उन्होंने हिन्दू मत के इस व्यापक ईश्वरीय सम्बन्ध की बात, जिसमें सभी मजहब के ईश्वर-विश्वासी समा जायें, कभी सुनी नहीं होगी। आप सोचिए कि श्री महाराज जी की बात कितनी सत्यतापूर्ण है। वस्तुतः ईश्वरवाद में मजहब-भेद हो ही नहीं सकता। ईश्वरवाद तो मानव जीवन का एक ऐसा व्यापक सत्य है कि मन्दिर, मस्जिद और चर्च के भेद इसे विभाजित नहीं कर सकते। ईश्वरवादी होकर मजहबी संघर्ष करने वाला घोर अनीश्वरवादी है। क्योंकि सही ईश्वरवाद का अर्थ है—प्रभु से आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करना। वैष्णव मत के अनुसार यही उपासना है। इसी आधार पर श्री महाराज जी ने भक्तिमती मीरा जी, महात्मा ईसा मसीह और पैगम्बर मुहम्मद को परम वैष्णव कह कर स्वीकार किया है। क्योंकि मीरा जी ने ईश्वर को अपना पति माना, महात्मा ईसा ने ईश्वर को अपना पिता माना और पैगम्बर मुहम्मद ने ईश्वर को अपना दोस्त माना और तीनों ही प्रभु के परम भक्त हुए। प्रभु-भक्ति के लिए ईश्वर को अपना मानना और उनको रस देने के लिए उनका प्रेमी होना अनिवार्य है। कोई मन्दिर में जाकर पूजा करेगा, कि मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ेगा, कि चर्च में जाकर प्रार्थना करेगा—यह प्रश्न ही नहीं उठता। यदि कोई प्रभु को अपना मान कर उनके प्रति प्रेम-भाव रखेगा और उन्हीं के नाते प्राणीमात्र के प्रति सद्भाव रखेगा तो उसे सब जगह परमात्मा मिलेगा, अन्यथा कहीं नहीं मिलेगा। यह ध्रुव सत्य है। श्री महाराज जी ने इस सत्य को स्वीकार

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

करने का परामर्श सभी ईश्वरवादी साधकों को दिया है। उनका यह विचार उनके प्रवचनों में व्यक्त है, जिसका अनुसरण मजहबी एकता को सुरक्षित रखने में समर्थ है।

श्री स्वामी जी महाराज को संन्यास देने वाले गुरु ने एक बार विदा होते समय कह दिया कि बेटा, जब तुम आजाद हो जाओगे, तो सारी प्रकृति तुम्हारी सेवा के लिए लालायित रहेगी, चराचर जगत् तुम्हारी आवश्यकता-पूर्ति के लिए लालायित रहेगा। वृक्ष तुम्हें फल-फूल देंगे और खूँखार शेर तुम्हें गोद में लेकर तुम्हारी रक्षा करेंगे। इतना कह कर सद्गुरुदेव ने स्वरचित एक दोहा सुना दिया—

"जीते जी मर जाय, अमर हो जावे।
दिल देवे, सो दिलबर को पावे॥"

'जीते जी मर जाय' अर्थात् अंकिचन, अचाह एवं अप्रयत्न हो जाना और 'दिलबर को दिल देवे' अर्थात् प्रभु को अपना मान कर उन्हें रस देने के लिए अपने को समर्पित करना।

श्री स्वामी जी महाराज ने गुरुवाणी को सर्वांश में धारण किया और उसे अपने जीवन में शत-प्रतिशत फलित होते देखा। अकिंचन, अचाह एवं अप्रयत्न होकर उन्होंने परम स्वाधीन, दिव्य-चिन्मय जीवन पा लिया तथा प्रभु के प्रेमी होकर प्रेम के अनन्त रस से भरपूर हो गये।

घोर पराधीनता की पीड़ा से मुक्त होकर अमरत्व के आनन्द में मग्न हो गए। इस सम्बन्ध में श्री महाराज जी ने अपना एक अनुभव सुनाया था। एक बार उनका शरीर अस्वस्थ हो गया था। उत्तराखण्ड की यात्रा करके वापस आए थे। हिल डायरिया से शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया था। साथ-साथ ज्वर भी रहने लगा। बीमारी की दशा में करीब 40 दिन बीत गए थे। चिकित्सकों के मतानुसार, नाड़ी की गति शरीर के नाश का

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

संकेत दे रही थी। मित्रों, प्रेमियों एवं चिकित्सकों ने चिन्ता प्रकट की। श्री स्वामी जी महाराज के शरीर को नियमानुसार कुशा और मृगछाला बिछा कर जमीन पर उतार दिया गया। चारों ओर प्रियजन खड़े थे। प्रेमी डाक्टर ने कहा कि 'बाबा जी चले।' इन्होंने सुना और प्रिय जनों के उमड़ते हुए हृदय के स्पन्दन को अनुभव किया। वीतराग सन्त को बड़ा भारी कौतूहल हुआ कि प्रियजन इतने दुःखी क्यों हैं? उन्होंने सोचा कि अब मैं देखता हूँ कि मृत्यु कैसी होती है? जब वे देखने लगे तो उन्हें बड़ा आनन्द आया। शरीर के छूट जाने में इतना हल्कापन और इतना आनन्द था कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं थी। इस अनुभव से वे इस निश्चय पर पहुँचे कि मृत्यु में कोई दुःख नहीं है। चूँकि आदमी शरीर को बनाए रखना चाहता है, इस कारण मरने में दुःखी और भयभीत होता है अन्यथा आनन्द ही आनन्द है। उनका आनन्द मृतकवत शरीर पर भी फैल गया था। वे उस शरीर को जमीन पर पड़ा हुआ देख रहे थे और सुन रहे थे कि मित्रगण कह रहे हैं कि देखो 'बाबा जी कितने प्रसन्न हैं।'

बुद्धि की प्रखरता, हृदय की कोमलता एवं जीवन के प्रति जागरूकता के गुण इनमें जन्मजात थे। अवसर पाकर इन गुणों का पूर्ण विकास हुआ।

एक बार वे अपने गुरुदेव के पास बैठे थे। इनके मन में शास्त्रों एवं उपनिषदों के अध्ययन का संकल्प उठा। आँखें तो थी नहीं, मन ही मन सोच कर रह गए। तत्काल ही इनके गुरुदेव बोल उठे—अरे भाई, ठहरी हुई बुद्धि में श्रुति का ज्ञान स्वतः अभिव्यक्त होता है। उसकी पाठशाला है 'एकान्त' और पाठ है 'मौन'। ज्ञानार्जन का यह रहस्य सुन कर ये बहुत प्रसन्न हो गए। इन्होंने एकान्त में मौन रह कर बुद्धि को सम कर लिया। बुद्धि की समता में वह ज्ञान उदित हो गया जो ग्रन्थों के अध्ययन से कभी

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

सम्भव ही नहीं है। उस ज्ञान के प्रकाश में इन्हें सृष्टि के आदि-अन्त के सभी रहस्यों का पता चल गया। सृष्टि के विधायक की मंगलकारिता एवं मानव जीवन के मंगलमय विधान का अर्थ स्पष्ट हो गया। इन्होंने जानने योग्य सब कुछ जान लिया, क्योंकि जिस ज्ञान से सब कुछ जाना जाता है, वह ज्ञान इनमें अभिव्यक्त हो गया था।

अन्तर्चक्षुओं के खुलते ही इनमें इतनी सामर्थ्य आ गई कि बाह्य जगत को भी देखने में समर्थ हो गए थे। वे भीतर-बाहर सब कुछ देख सकते थे। वे बिल्कुल निर्द्वन्द्व एवं निर्भीक होकर रहते थे। बाहरी-आँखों के बिगड़ जाने का दुःख सदा-सदा के लिए मिट गया।

इनका इतना विकास अल्प समय में ही हो गया। जिन मित्रों ने प्रारम्भ से इनको देखा है, वे कहते हैं कि देखते ही देखते उनके भीतर सत्य से अभिन्न होने की व्याकुलता जो थी, वह परम शान्ति में बदल गई। उनका मुखमण्डल प्रकाशमान हो गया। वे अपने अविनाशी अस्तित्व में आप स्थित रहने लगे। उनके हृदय में ईश्वरीय प्रेम लहराने लगा, जिसके स्पर्श मात्र से निकटवर्ती मित्रगण पुलकायमान होने लगे। योग के द्वारा सिद्ध होने वाली सब सिद्धियाँ सहज ही उनमें आ गईं, पर वे उन सब सिद्धियों को गोपनीय रखते थे। उनका जीवन योग-बोध एवं प्रेम का सजीव प्रतीक था। यही कारण है कि इनकी उपस्थिति से वातावरण में प्रेम की लहरियाँ उठती रहती थीं।

उनके जीवन से यह सत्य प्रत्यक्ष होता था कि ज्ञान और प्रेम का तत्त्व जब किसी सन्त में अभिव्यक्त हो जाता है तो वह विभु हो जाता है। श्री महाराज जी के निकट सम्पर्क में आने वाले अनेक साधक भाई-बहन एक अज्ञात मिठास के आभास से आकर्षित हो कर चुपचाप मंत्र-मुग्ध की भाँति उनके पास बैठे रहते थे।

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

प्रेम-पथ की साधना की चर्चा जब होने लगती थी और श्री महाराज जी, प्रेमी तथा प्रेमास्पद के अनन्त विहार की मधुर वार्ता सुनाने लग जाते थे तो सुनने वाले ईश्वर-विश्वासी साधक अपने को भूल जाते थे। अनेक श्रोताओं ने समय-समय पर अपना अनुभव हमें बताया कि श्री महाराज की वाणी में उनका रसमय जीवन ही प्रवाहमान होकर श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करता था, जिससे श्रोता अपने आपको प्रेम-भाव में उत्तरोत्तर ऊँचे उठते हुए पाते थे। उन्हें अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती थी।

इनकी प्रश्नोत्तर की शैली बेजोड़ थी। वाक्पटुता एवं उन्मुक्त हास्य, भ्रम-निवारण के लिए कड़ी-से कड़ी आलोचना के साथ ही मातृवत् स्नेह का व्यवहार जिज्ञासुजनों के विशेष आकर्षण का स्रोत था। अन्तर्बोध से अनुप्राणित, इनकी अकाट्य युक्तियों में बहुत ही स्पष्टता, दृढ़ता एवं निस्सन्देहता थी। इनके प्रवचनों एवं साहित्य में कहीं भी आपको ग्रन्थों के प्रमाणों का उल्लेख नहीं मिलेगा। वे जानते थे कि स्वत: सिद्ध सत्य को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वे कभी सोचकर नहीं बोलते थे। कई बार उन्होंने प्रसंगवश ऐसा कहा कि, "भाई जैसे तुम सुनते हो वैसे मैं भी सुनता हूँ। मैं भी तो श्रोता हूँ।"

उनकी अहं-शून्य वाणी में ज्ञान और प्रेम की अजस्र धारा सहज ही प्रवाहित होती रहती थी, जिसे सुनकर बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी कहते थे और आज भी कह रहे हैं कि वर्षों तक ग्रन्थों के अध्ययन से दर्शन के जो गूढ़ रहस्य समक्ष में नहीं आये थे, वे सब इन बेपढ़े सन्त की वाणी से स्पष्ट हो गए।

करुणा से द्रवित, सर्वात्मभाव से भावित सन्त-हृदय में गहन एकान्तिक चिन्तन के फलस्वरूप मानव-जीवन सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर स्वरूप 'मानवता के मूल सिद्धान्त' प्रकाश में आए। उनको श्री महाराज जी

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

ने मानव-समाज के लिए एक नवीन क्रान्तिकारी विचारधारा के रूप में संजोया। उसी विचारधारा तथा साधन प्रणाली का प्रतीक है—मानव-सेवा-संघ। इस संस्था की स्थापना सन्त शिरोमणि पूज्यपाद स्वामी शरणानन्द जी महाराज ने इस हेतु से की कि इसके माध्यम से युगों-युगों तक मानव-समाज कि विचारात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक सेवाएँ होती रहें। 1952 ई० में इसकी स्थापना हुई तथा सन् 1953 ई० में इसका रजिस्ट्रेशन हो गया। वृन्दावन में इसका प्रधान कार्यालय है। इस संस्था को स्थापित करने की आवश्यकता इसलिए पड़ गई कि मानव मात्र के परित्राण के लिए जिस सर्वमान्य विचार-प्रणाली का सृजन श्री महाराज जी की अन्तर्व्यथा से हुआ था—उसको उन्होंने अपने व्यक्तिगत नाम से प्रकाशित करना पसन्द नहीं किया। जिसे अहं को अभिमान-शून्य रखना अभीष्ट होता है, वे आत्म-ख्याति से बच कर रहते हैं।

इसमें दूसरी एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्री महाराज जी के विचारानुसार देश, काल, मत, मजहब, सम्प्रदाय एवं वर्ग से निरपेक्ष जो जीवन का सत्य है, उसे व्यक्ति के माध्यम से प्रकट करना उसका मूल्य घटाना है और सबसे बड़ी बात यह है कि जिन्होंने परम प्रेमास्पद की सत्ता से भिन्न अपना अस्तित्व ही नहीं रखा, वे अपने नाम से कोई बात कैसे कह सकते थे। इन्हीं कतिपय उल्लेखनीय कारणों से 'मानव-सेवा-संघ' की स्थापना हुई।

तब से अब तक देश के विभिन्न भागों में मानव-सेवा-संघ के माध्यम से जन-जन के भीतर सोई हुई मानवता को जगाने की सेवा की जा रही है। श्री स्वामी जी महाराज इस बात के लिए बड़े ही आतुर रहते थे कि प्रत्येक भाई-बहन अपने कल्याण में स्वाधीन और समर्थ हो जाए।

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

उनका प्रादुर्भाव एक विलक्षण विभूति के रूप में हुआ, ऐसा उनके सम-सामयिक सभी महान् सन्त एवं महापुरुष मानते हैं। प्रचण्ड ज्ञान, अकाट्य युक्ति, सरल विश्वास एवं अनन्य भक्ति—ये सभी पक्ष उनमें अपनी पराकाष्ठा पर थे। ऐसा अद्‌भुत काम्बिनेशन कहीं देखने में नहीं आता, जैसा परम पूज्य स्वामी जी महाराज में विद्यमान था। फिर भी उपर्युक्त दिव्यताओं को अपनी विशेषता मानने की भूल उन्होंने कभी नहीं की—

मेरा कुछ नहीं है।
मुझे कुछ नहीं चाहिए।
मैं कुछ नहीं हूँ।
सर्व समर्थ प्रभु मेरे अपने हैं—

यह चिरन्तन सत्य उनका जीवन था और यही उनके कथन का केन्द्र भी है। श्री महाराज जी की बड़ी भारी विशेषता यह रही है कि वे साधकों को किसी बाहरी विधि-विधान एवं अभ्यासजन्य साधनों पर अटकने नहीं देते थे, विभिन्न दार्शनिक मतभेदों में उलझने नहीं देते थे, किसी दर्शन या साधन-प्रणाली का आग्रह या विरोध नहीं करते थे। उन्होंने कभी अपना मत दूसरों पर आरोपित नहीं किया। स्वयं कट्टर ईश्वर-वादी होते हुए भी कभी ईश्वरवाद का प्रचार नहीं किया।

वे एक तत्त्वदर्शी सन्त थे। इसी कारण उन्होंने भक्ति-पथ, ज्ञान-पथ या योग-पथ में किसी को सबसे अच्छा या किसी को उससे कम अच्छा नहीं बताया, किसी को सहज या किसी को अपेक्षाकृत कठिन नहीं बताया। उन्होंने इस बात को घोषित किया है कि "दर्शन अनेक और जीवन एक है।" उन्होंने साधक मात्र को यह अभय वचन दिया है कि तुम आरम्भ में अपनी रुचि, योग्यता, सामर्थ्य, विश्वास और विचार के अनुसार

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

किसी एक साधन-पथ को पसन्द कर लो, पूर्णता में तुम्हें पूर्ण जीवन मिलेगा। कर्त्तव्यनिष्ठ को भी, योगी को भी, विचारक को भी एवं प्रभु विश्वासी को भी दिव्य, चिन्मय, रसरूप जीवन मिलता है, यह निर्विवाद सत्य है। जीवन की पूर्णता में योग, बोध और प्रेम से अभिन्नता सभी साधकों की हो जाती है। श्री महाराज जी का यह क्रान्तिकारी विचार उनके प्रवचनों में स्पष्ट व्यक्त होता था।

व्यक्ति के कल्याण एवं सुन्दर समाज के निर्माण सम्बन्धी कोई ऐसी समस्या नहीं है कि जिसका समाधान श्री महाराज जी की वाणी के अनुसरण से न हो जाए। श्री महाराज जी के अनुसार मानव-जीवन का सर्वोत्तम चित्र यह है कि—

शरीर विश्व के काम आ जाय,
अहं अभिमान-शून्य हो जाय
और, हृदय परम प्रेम से परिपूर्ण हो जाय।

इस आदर्श को उन्होंने अपने जीवन से दर्शाया और अपने महाप्रयाण से भी यही पाठ पढ़ाया। जब उन्हें यह विदित हो गया कि उनका शरीर अब समाज की सेवा के योग्य नहीं रह गया, तब उस शरीर को त्यागने का समय, तिथि एवं विधि भीतर ही भीतर निश्चित कर ली और कहने लगे—

(1) मैं त्रिकाल में भी शरीर नहीं हूँ।

(2) शरीर के नाश से मुझे दुःख नहीं होगा। मैं बहुत आनन्द में रहूँगा।

(3) बीच की यह उपाधि हट जाएगी तो भक्त और भगवान के अनन्त मिलन का अनन्त आनन्द रहेगा। इसलिए इस शरीर के छूटने पर शोक-सभाएँ नहीं होंगी; सत्संग समारोह होंगे।

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

(4) शरीर की बैकुण्ठी नहीं सजेगी, प्रोसेशन नहीं निकलेगा। मैं क्रान्तिकारी संन्यासी हूँ। तुम लोग विधि-विधान में मत पड़ना। कुटी में से पार्थिव शरीर निकालकर, आँगन में रखकर भस्म कर देना। शरीर की भस्मी मिट्टी में मिल जाएगी, खाद बन जाएगी, घास उगेगी, पशुओं का चारा बनेगा।

(5) समाधि-स्थल पर कोई चिह्न नहीं बनेगा, फूल नहीं चढ़ेगा।

(6) साधना का नाश नहीं होता है। अतः सेवा, त्याग, प्रेम का व्रत विभु होकर जन-समाज में फैलेगा।

(7) इस शरीर की सेवा में जिसकी रुचि है, वह मानव-सेवा-संघ की सेवा करे। संघ मेरा शरीर है और वह स्थाई रहेगा।

(8) जो लोग मुझे प्यार करते हैं वे भगवान को प्यार करें, क्योंकि भगवत्-प्रेम मेरा जीवन है।

(9) जो उपदेश भगवद्-विश्वास की जगह पर अपने व्यक्तित्व का विश्वास दिलाते हैं और भगवत्-सम्बन्ध के बदले अपने व्यक्तित्व से सम्बन्ध जोड़ने देते हैं, वे घोर अनर्थ करते हैं।

(10) सिवाय परमात्मा के और कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, कुछ नहीं है।

(11) व्यक्त जगत् की विविधता के भीतर अव्यक्त नित्य प्रेम तत्त्व के एकत्वदर्शी सन्त ने कहा—

(क) कोई गैर नहीं है—यह धर्म का मंत्र है।

(ख) कोई और नहीं है—यह प्रेम का मंत्र है।

प्रिय साधको, इस सत्य को मानो। सर्व समर्थ प्रभु तुम्हारे अपने हैं, उनके होकर रहो, उन्हीं का काम करो और यह सद्गुरु का आशीर्वचन है कि उन्हीं में तुम्हारा नित्य वास होगा।

Swami Sharnanandji (Manav Seva Sangh)

ऐसी अमृतमयी वाणी को सुनाकर, योगस्थित होकर, नाशवान् शरीर को स्वेच्छा से त्याग कर उस ब्रह्मनिष्ठ सन्त ने जीने की और मरकर अमर होने की कला हमें सिखायी।

उन सन्त शिरोमणि के चरणों में हमारा शत्-शत् नमन।

जब तक पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज सशरीर इस संसार में विराजमान थे, तब उन्होंने अपना जीवनदायी संदेश ग्राम-ग्राम, प्रान्त-प्रान्त अविराम भ्रमण करते हुए साधु-सन्त, साधक, समाजसेवी, साहित्यकार आदि सभी वर्गों को सुनाया और अब उनके ब्रह्मलीन हो जाने पर मानव-सेवा-संघ के माध्यम से यह काम हो रहा है।

सन्त अमर हैं। उनकी वाणी अमर है। हम सब भाई-बहन अमरत्व से अभिन्न हो जायें, इसी सद्भावना के साथ,

निवेदिका : देवकी

सन्त-वाणी

- *अपने दुःख का कारण अपने से भिन्न किसी और को नहीं समझना चाहिए।*
- *अपनी निर्बलता को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न करना चाहिए।*
- *संसार से सच्ची निराशा परम बल है।*
- *अपने को सब ओर से हटाकर अपने में ही अपने प्रेम-पात्र को अनुभव करना अनन्य भक्ति है।*